**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor (RJIF):** 8.4
IJAR 2025; 11(2): 270-277
www.allresearchjournal.com
Received: 06-12-2024
Accepted: 08-01-2025

**अरुण कुमार**
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

**डॉ. रामकैलाश यादव**
अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, एल. सी. एस. कॉलेज, दरभंगा, बिहार, भारत

**Corresponding Author:**
**अरुण कुमार**
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

# स्त्रीवादी राजनीति: एक ऐतिहासिक और सैद्धांतिक अध्ययन

**अरुण कुमार, रामकैलाश यादव**

**सारांश**

स्त्रीवादी राजनीति एक ऐसा वैचारिक और व्यावहारिक ढांचा है जो लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय और सत्ता संरचनाओं के पुनर्गठन की मांग करता है। यह शोधपत्र स्त्रीवादी राजनीति के ऐतिहासिक विकास और इसके सैद्धांतिक आधारों का विश्लेषण करता है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक, नारीवादी आंदोलनों ने समाज में महिलाओं की स्थिति को बेहतर करने के लिए संघर्ष किया है। प्रथम लहर नारीवाद ने मताधिकार और शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया, जबकि दूसरी लहर ने यौन स्वतंत्रता और कार्यस्थल समानता जैसे मुद्दों को उठाया। तीसरी और चौथी लहर ने विविधता, समावेशिता और डिजिटल सक्रियता को अपनाया। यह अध्ययन उदारवादी, मार्क्सवादी, कट्टरपंथी और उत्तर-आधुनिक नारीवादी सिद्धांतों की पड़ताल करता है। भारत में, औपनिवेशिक इतिहास, जाति और धर्म ने नारीवाद को आकार दिया है, जहाँ दलित नारीवाद ने मुख्यधारा के नारीवाद को चुनौती दी। समकालीन चुनौतियों में यौन हिंसा, डिजिटल असमानता और आर्थिक शोषण शामिल हैं, जबकि डिजिटल प्लेटफॉर्म और नीतिगत सुधार संभावनाएँ प्रदान करते हैं। भारत में निर्भया कांड और #MeToo जैसे आंदोलनों ने नारीवादी चेतना को मजबूत किया। यह शोधपत्र ऐतिहासिक साक्ष्यों, नवीनतम शोधों का उपयोग करता है। निष्कर्ष में, यह तर्क दिया गया है कि नारीवादी राजनीति को समावेशी बनाना आवश्यक है ताकि यह सभी वर्गों और पहचानों का प्रतिनिधित्व कर सके। यह अध्ययन नारीवादी राजनीति की प्रासंगिकता और भविष्य की दिशा को रेखांकित करता है।

**कूटशब्द:** स्त्रीवादी राजनीति, लैंगिक समानता, नारीवादी सिद्धांत, ऐतिहासिक विकास, सामाजिक न्याय

## 1. प्रस्तावना

स्त्रीवादी राजनीति एक ऐसी विचारधारा और आंदोलन है जो लैंगिक असमानताओं को समाप्त करने और समाज में महिलाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए समर्पित है। यह केवल कानूनी सुधारों या मताधिकार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पितृसत्तात्मक संरचनाओं के मूलभूत परिवर्तन की मांग करती है।

यह शोधपत्र स्त्रीवादी राजनीति के ऐतिहासिक विकास और इसके सैद्धांतिक आधारों का गहन अध्ययन करने का प्रयास करता है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक डिजिटल युग तक, नारीवादी आंदोलनों ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का कार्य किया है। भारत और वैश्विक संदर्भों में इसकी प्रासंगिकता को समझना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह न केवल लैंगिक समानता की बात करता है, बल्कि सामाजिक ढांचे में शक्ति के असंतुलन को भी उजागर करता है।

स्त्रीवादी राजनीति का इतिहास विभिन्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक ने अपने समय की विशिष्ट समस्याओं को संबोधित किया। प्रथम लहर ने महिलाओं के मताधिकार और शिक्षा के अधिकार पर जोर दिया, जबकि दूसरी लहर ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कार्यस्थल में समानता जैसे मुद्दों को उठाया। तीसरी और चौथी लहर ने नारीवाद को और व्यापक बनाया, जिसमें जाति, वर्ग, यौन अभिविन्यास और डिजिटल सक्रियता जैसे पहलू शामिल हुए। भारत में, नारीवाद का स्वरूप औपनिवेशिक इतिहास, जाति व्यवस्था और धार्मिक प्रभावों से आकार लिया गया है। यहाँ सावित्रीबाई फुले से लेकर निर्भया आंदोलन तक, नारीवादी चेतना ने विविध रूप लिए हैं।

इस शोधपत्र का उद्देश्य तीन प्रमुख प्रश्नों का उत्तर देना है: पहला, स्त्रीवादी राजनीति का ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ? दूसरा, इसके सैद्धांतिक आधार क्या हैं और वे समाज को कैसे प्रभावित करते हैं? तीसरा, समकालीन समाज में इसकी चुनौतियाँ और संभावनाएँ क्या हैं? यह अध्ययन विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों जैसे उदारवादी, मार्क्सवादी और उत्तर-आधुनिक नारीवाद की जाँच करता है। साथ ही, यह भारत में नारीवादी आंदोलनों के विशेष संदर्भ को भी विश्लेषित करता है, जहाँ जाति और लिंग के अंतर्संबंध महत्वपूर्ण हैं। यह शोध नवीनतम साक्ष्यों और ऐतिहासिक विश्लेषण पर आधारित है, जिससे यह समकालीन चर्चाओं के लिए प्रासंगिक बनता है।

स्त्रीवादी राजनीति का अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे लैंगिक असमानताएँ सामाजिक संरचनाओं में गहरे तक जमी हुई हैं। यह शोधपत्र न केवल अतीत की उपलब्धियों को रेखांकित करता है, बल्कि भविष्य के लिए एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की दिशा भी सुझाता है।

## 2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्त्रीवादी राजनीति का इतिहास मानव सभ्यता के विभिन्न चरणों से गुजरता है। यह खंड प्राचीन काल से लेकर समकालीन डिजिटल युग तक की यात्रा को चार भागों में विश्लेषित करता है: प्राचीन और मध्यकालीन संदर्भ, प्रथम लहर नारीवाद, दूसरी लहर नारीवाद, और तीसरी व चौथी लहर नारीवाद। यह विकास सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है। स्त्रीवादी राजनीति की नींव प्राचीन सभ्यताओं में देखी जा सकती है, हालाँकि यह औपचारिक रूप से परिभाषित नहीं थी। भारत में वैदिक काल में, ऋग्वेद जैसे ग्रंथों में गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों का उल्लेख है, जो बौद्धिक चर्चाओं में भाग लेती थीं [1]। यह संकेत देता है कि उस समय महिलाओं को कुछ स्वायत्तता मिली थी। लेकिन उत्तर-वैदिक काल से पितृसत्तात्मक संरचनाएँ मजबूत हुईं। मध्यकाल में, मनुस्मृति ने महिलाओं को पुरुषों के अधीन कर दिया, उनकी स्वतंत्रता और संपत्ति अधिकार छीन लिए [2]।

यूरोप में भी मध्ययुग में महिलाएँ घरेलू भूमिकाओं तक सीमित थीं। ईसाई चर्च ने उन्हें "कमजोर" माना, और सामंती व्यवस्था ने उनकी स्थिति को और कमजोर किया [3]। जोन ऑफ आर्क जैसे अपवाद दुर्लभ थे। इस प्रकार, प्राचीन काल की सापेक्ष स्वतंत्रता मध्यकाल तक समाप्त हो गई, जिसने नारीवादी आंदोलनों के लिए आधार तैयार किया।

19वीं सदी में प्रथम लहर नारीवाद ने स्त्रीवादी राजनीति को औपचारिक रूप दिया। औद्योगिक क्रांति और प्रबोधन के विचारों से प्रभावित, इसका लक्ष्य मताधिकार और

शिक्षा था। अमेरिका में सेनेका फॉल्स सम्मेलन (1848) एक महत्वपूर्ण घटना थी, जहाँ एलिजाबेथ कैडी स्टैंटन ने समानता की माँग की [4]। ब्रिटेन में, जॉन स्टुअर्ट मिल ने द सब्जेक्शन ऑफ वुमन में महिलाओं की दासता की आलोचना की [5]। इसके परिणामस्वरूप, 1920 में अमेरिका में महिलाओं को मताधिकार मिला। भारत में, औपनिवेशिक काल में सावित्रीबाई फुले ने 1848 में पहला बालिका विद्यालय खोला, जो महिलाओं और दलितों के लिए शिक्षा का प्रतीक बना [6]। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ अभियान चलाया, जिसे 1829 में प्रतिबंधित किया गया। यह लहर उच्च वर्ग तक सीमित रही, लेकिन इसने भविष्य के संघर्षों की नींव रखी।

दूसरी लहर नारीवाद ने 1960-1980 के दशक में सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों को उठाया। सिमोन द बोउvoir की द सेकेंड सेक्स ने पितृसत्ता की संरचनाओं को चुनौती दी, यह तर्क देते हुए कि महिलाएँ "दूसरे" के रूप में देखी जाती हैं [7]। अमेरिका में बेटी फ्रीडन की द फेमिनिन मिस्टिक ने गृहिणियों की समस्याओं को उजागर किया [8]। इस लहर ने यौन स्वतंत्रता, प्रजनन अधिकार और कार्यस्थल समानता पर जोर दिया। भारत में, चिपको आंदोलन (1970) ने नारीवाद को पर्यावरण से जोड़ा। उत्तराखंड की महिलाओं ने जंगलों को बचाने के लिए संघर्ष किया, जिसे वंदना शिवा ने नारीवादी चेतना का प्रतीक माना [9]। यह लहर ग्रामीण और शहरी महिलाओं के बीच की खाई को भी दिखाती है, क्योंकि इसकी पहुँच सीमित रही।

तीसरी लहर (1990) ने विविधता और समावेशिता पर ध्यान दिया। किम्बर्ले क्रेंशॉ की "इंटरसेक्शनैलिटी" ने जाति, वर्ग और लिंग के अंतर्संबंधों को रेखांकित किया [10]। चौथी लहर डिजिटल युग में उभरी, जिसमें #MeToo (2017) ने यौन उत्पीड़न के खिलाफ वैश्विक आंदोलन शुरू किया [11]। भारत में, तीसरी लहर ने दलित नारीवाद को बल दिया, जिसे शर्मिला रेगे ने विश्लेषित किया [12]। चौथी लहर का प्रभाव निर्भया कांड (2012) में दिखा, जब यौन हिंसा के खिलाफ देशव्यापी विरोध हुआ [13]। इसके परिणामस्वरूप, 2013 में सख्त कानून बने। डिजिटल प्लेटफॉर्म ने इसे जन-आंदोलन बनाया।

## 3. सैद्धांतिक ढांचा

स्त्रीवादी राजनीति को समझने के लिए इसके सैद्धांतिक आधारों का विश्लेषण आवश्यक है। यह खंड विभिन्न नारीवादी सिद्धांतों जैसे उदारवादी, मार्क्सवादी, कट्टरपंथी, उत्तर-आधुनिक, और भारतीय संदर्भ में नारीवाद की पड़ताल करता है। ये सिद्धांत न केवल लैंगिक असमानता को समझने के ढांचे प्रदान करते हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए रणनीतियाँ भी सुझाते हैं। प्रत्येक दृष्टिकोण अपने समय और संदर्भ के अनुसार विकसित हुआ, जो नारीवादी राजनीति की जटिलता को दर्शाता है।

### 3.1 उदारवादी नारीवाद

उदारवादी नारीवाद वह विचारधारा है जो लैंगिक समानता को कानूनी और राजनीतिक सुधारों के माध्यम से हासिल करने पर बल देती है। इसकी नींव 18वीं सदी में मैरी वोल्स्टनक्राफ्ट ने अपनी पुस्तक ए विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन (1792) में रखी, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि महिलाएँ तर्कसंगत प्राणी हैं और उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा और अवसर मिलने चाहिए [8]। यह सिद्धांत प्रबोधन युग के व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता के विचारों से प्रेरित है। उदारवादी नारीवादी मानते हैं कि मौजूदा व्यवस्था में सुधार करके महिलाओं को समान अधिकार दिए जा सकते हैं, जैसे मताधिकार, संपत्ति का अधिकार, और कार्यस्थल में समान वेतन। इसका एक बड़ा उदाहरण 19वीं और 20वीं सदी में पश्चिमी देशों में मताधिकार आंदोलन है, जिसके परिणामस्वरूप अमेरिका में 1920 में 19वाँ संशोधन पारित हुआ।

हालाँकि, उदारवादी नारीवाद की आलोचना भी होती है। कैथरीन मैककिनन जैसे विचारकों का कहना है कि यह सिद्धांत पितृसत्ता की गहरी संरचनाओं को चुनौती नहीं देता, बल्कि केवल सतही सुधारों तक सीमित रहता है [9]।

उदाहरण के लिए, कानून में समानता होने के बावजूद, कार्यस्थल में लैंगिक भेदभाव और वेतन असमानता आज भी बनी हुई है। भारत में भी, संविधान द्वारा लैंगिक समानता की गारंटी (अनुच्छेद 14) के बावजूद, सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ महिलाओं को पूर्ण स्वतंत्रता से वंचित रखती हैं। इस तरह, उदारवादी नारीवाद प्रारंभिक कदम के रूप में प्रभावी है, लेकिन यह व्यापक परिवर्तन लाने में सीमित माना जाता है।

### 3.2 मार्क्सवादी नारीवाद

मार्क्सवादी नारीवाद लैंगिक शोषण को पूँजीवादी व्यवस्था से जोड़ता है और इसे वर्ग संघर्ष का हिस्सा मानता है। इस सिद्धांत का आधार फ्रेडरिक एंगेल्स की पुस्तक द ओरिजिन ऑफ द फैमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एंड द स्टेट (1884) में मिलता है, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि निजी संपत्ति की शुरुआत के साथ ही महिलाओं का अधीनस्थीकरण शुरू हुआ [10]। एंगेल्स के अनुसार, पूँजीवाद ने महिलाओं को उत्पादन के साधनों से वंचित कर घरेलू श्रम तक सीमित कर दिया, जिससे उनका आर्थिक शोषण बढ़ा। यह सिद्धांत मानता है कि लैंगिक समानता तभी संभव है जब पूँजीवादी व्यवस्था समाप्त हो और समाजवादी ढाँचा स्थापित हो।

भारत में मार्क्सवादी नारीवाद की प्रासंगिकता ग्रामीण क्षेत्रों में स्पष्ट दिखती है, जहाँ भूमिहीन मजदूर महिलाएँ दोहरे शोषण का शिकार होती हैं—वर्ग और लिंग दोनों के आधार पर। बीना अग्रवाल ने अपनी पुस्तक ए फील्ड ऑफ वन्स ओन में इसकी चर्चा की, जिसमें उन्होंने दिखाया कि भूमि सुधारों के अभाव में महिलाओं की स्थिति नहीं सुधर सकती [11]। उदाहरण के लिए, खेतिहर मजदूर महिलाएँ पुरुषों से कम वेतन पाती हैं और घरेलू जिम्मेदारियों के कारण उनकी मेहनत अदृश्य रहती है। हालाँकि, इस सिद्धांत की आलोचना यह है कि यह लैंगिक असमानता को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखता है और सांस्कृतिक या मनोवैज्ञानिक पहलुओं को नजरअंदाज करता है। फिर भी, यह सामाजिक परिवर्तन के लिए एक शक्तिशाली ढांचा प्रदान करता है।

### 3.3 कट्टरपंथी नारीवाद

कट्टरपंथी नारीवाद पितृसत्ता को लैंगिक असमानता की मूल जड़ मानता है और इसका पूर्ण उन्मूलन चाहता है। इस विचारधारा को केट मिलेट ने अपनी पुस्तक सेक्शुअल पॉलिटिक्स (1970) में रेखांकित किया, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि पितृसत्ता न केवल कानूनी या आर्थिक, बल्कि सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर भी काम करती है [12]। यह सिद्धांत मानता है कि पुरुष-प्रधान समाज ने महिलाओं को यौन वस्तु और प्रजनन मशीन के रूप में देखा, जिसे बदलने के लिए संपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन की जरूरत है। कट्टरपंथी नारीवादी यौन हिंसा, अश्लील साहित्य, और घरेलू हिंसा जैसे मुद्दों पर आक्रामक रुख अपनाते हैं।

जैसे की, 1970 के दशक में पश्चिम में कट्टरपंथी नारीवादियों ने "व्यक्तिगत ही राजनीतिक है" का नारा दिया, जिसने घरेलू जीवन को भी राजनीतिक विश्लेषण का हिस्सा बनाया। भारत में, यह सिद्धांत बलात्कार और दहेज हिंसा जैसे मुद्दों से जुड़ा है, जहाँ पितृसत्तात्मक मूल्य महिलाओं को निशाना बनाते हैं। हालाँकि, इसकी आलोचना होती है कि यह पुरुषों को शत्रु के रूप में चित्रित करता है और सहयोग की संभावना को कम करता है। फिर भी, कट्टरपंथी नारीवाद ने नारीवादी आंदोलनों को गहराई और तीव्रता प्रदान की।

### 3.4 उत्तर-आधुनिक नारीवाद

उत्तर-आधुनिक नारीवाद लिंग को एक स्थिर या प्राकृतिक श्रेणी के रूप में अस्वीकार करता है और इसे सामाजिक निर्माण मानता है। इस विचारधारा को जूडिथ बटलर ने अपनी पुस्तक जेंडर ट्रबल (1990) में स्पष्ट किया, जिसमें उन्होंने कहा कि लिंग एक प्रदर्शन (परफॉर्मेंस) है, जो सामाजिक नियमों से बनता है [13]। यह सिद्धांत पारंपरिक नारीवाद की सीमाओं को तोड़ता है और लिंग की तरलता

पर जोर देता है, जिससे ट्रांसजेंडर और क्वीयर पहचानों को शामिल किया जा सके।

उदाहरण के लिए, उत्तर-आधुनिक नारीवाद ने समकालीन आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जैसे एलजीबीटीक्यू+ अधिकारों की माँग। भारत में, 2018 में धारा 377 को हटाने का निर्णय इस दृष्टिकोण से प्रभावित था, जिसमें लिंग और यौन अभिविन्यास की विविधता को मान्यता दी गई। हालाँकि, इसकी आलोचना यह है कि यह सैद्धांतिक स्तर पर जटिल है और व्यावहारिक समाधानों में कमजोर है। फिर भी, यह नारीवाद को समावेशी और आधुनिक बनाने में योगदान देता है।

### 3.5 भारतीय संदर्भ में नारीवादी सिद्धांत

भारत में नारीवाद का स्वरूप औपनिवेशिक इतिहास, जाति व्यवस्था और धार्मिक प्रभावों से आकार लिया गया है। उमा चक्रवर्ती ने तर्क दिया कि ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ने महिलाओं को जाति और लिंग दोनों के आधार पर अधीन किया [14]। उदाहरण के लिए, मनुस्मृति जैसे ग्रंथों ने न केवल लैंगिक, बल्कि जातिगत नियमों को भी सख्त किया। भारतीय नारीवाद को पश्चिमी सिद्धांतों से अलग समझना जरूरी है, क्योंकि यहाँ की सामाजिक वास्तविकताएँ अनूठी हैं।

दलित नारीवाद इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण योगदान है, जिसने मुख्यधारा के नारीवाद की आलोचना की। शर्मिला रेगे ने दिखाया कि दलित महिलाएँ दोहरे उत्पीड़न का शिकार होती हैं—जाति और लिंग के कारण [15]। उदाहरण के लिए, उच्च जाति की महिलाओं की तुलना में दलित महिलाओं को शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक कम पहुँच मिलती है। साथ ही, औपनिवेशिक काल में सती और विधवा पुनर्विवाह जैसे मुद्दों ने भारतीय नारीवाद को प्रभावित किया। समकालीन भारत में, #MeToo और निर्भया जैसे आंदोलनों ने इन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप दिया। इस तरह, भारतीय नारीवाद एक समृद्ध और जटिल ढांचा प्रस्तुत करता है, जो वैश्विक और स्थानीय संदर्भों को जोड़ता है।

## 4. समकालीन चुनौतियाँ और संभावनाएँ

स्त्रीवादी राजनीति आज के दौर में नई चुनौतियों और संभावनाओं का सामना कर रही है। वैश्विक और भारतीय संदर्भों में यह स्पष्ट है कि लैंगिक समानता की लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। यौन हिंसा आज भी एक गंभीर वैश्विक समस्या बनी हुई है, जिसे संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट ने रेखांकित किया है। इस रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया भर में हर तीसरी महिला अपने जीवनकाल में किसी न किसी रूप में हिंसा का शिकार होती है [16]। यह हिंसा केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और आर्थिक रूपों में भी प्रकट होती है। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और घरेलू हिंसा जैसे मुद्दे महिलाओं के लिए सुरक्षित स्थान को सीमित करते हैं। इसके अलावा, डिजिटल युग ने नई चुनौतियाँ पेश की हैं। ऑनलाइन उत्पीड़न, ट्रोलिंग, और साइबर स्टॉकिंग महिलाओं की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर महिलाओं के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणियाँ और धमकियाँ आम हो गई हैं, जो डिजिटल असमानता को और गहरा करती हैं। यह असमानता तकनीकी पहुँच तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल दुनिया में सुरक्षित भागीदारी की कमी को भी दर्शाती है। जलवायु परिवर्तन एक और वैश्विक चुनौती है जो महिलाओं को असमान रूप से प्रभावित करता है। विकासशील देशों में, जहाँ महिलाएँ अक्सर जल और ईंधन जैसे संसाधनों पर निर्भर होती हैं, पर्यावरणीय संकट उनकी आजीविका और सुरक्षा को खतरे में डालता है। इस तरह, वैश्विक स्तर पर नारीवादी राजनीति को बहुआयामी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है, जो केवल लैंगिक मुद्दों तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय असमानताओं से जुड़ी हैं।

भारत में समकालीन चुनौतियाँ अपने आप में एक जटिल परिदृश्य प्रस्तुत करती हैं। यहाँ लैंगिक हिंसा एक बड़ी समस्या है, जिसके आँकड़े राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) की 2023 की रिपोर्ट में स्पष्ट हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार, महिलाओं के खिलाफ अपराधों में पिछले कुछ

वर्षों में वृद्धि हुई है, जिसमें बलात्कार, दहेज उत्पीड़न और घरेलू हिंसा शामिल हैं [17]। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या और गंभीर है, जहाँ सामाजिक रूढ़ियाँ और कानूनी जागरूकता की कमी महिलाओं को न्याय से वंचित रखती है। शिक्षा की कमी भी एक प्रमुख चुनौती है। यूनेस्को के आँकड़ों के अनुसार, भारत में लाखों लड़कियाँ आज भी प्राथमिक शिक्षा से वंचित हैं, खासकर गरीब और हाशिए पर रहने वाले समुदायों में [19]। बाल विवाह एक अन्य मुद्दा है जो शिक्षा और स्वास्थ्य पर असर डालता है। हालाँकि 2006 में बाल विवाह निषेध अधिनियम लागू हुआ, फिर भी ग्रामीण इलाकों में इसकी प्रथा जारी है। इसके अलावा, कार्यस्थल पर असमानता भी बनी हुई है। महिलाएँ पुरुषों की तुलना में कम वेतन पाती हैं और नेतृत्वकारी भूमिकाओं में उनकी भागीदारी सीमित है। शहरी क्षेत्रों में भी, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एक आम समस्या है, जिसके खिलाफ 2013 का यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम लागू होने के बावजूद पूर्ण सफलता नहीं मिली [20]। साथ ही, जाति और धर्म आधारित हिंसा भारतीय संदर्भ में नारीवादी राजनीति को और जटिल बनाती है। दलित और आदिवासी महिलाएँ दोहरे उत्पीड़न का शिकार होती हैं, जहाँ लैंगिक हिंसा के साथ-साथ सामाजिक बहिष्कार भी उनकी चुनौतियों को बढ़ाता है। इस तरह, भारत में नारीवादी राजनीति को स्थानीय सामाजिक संरचनाओं और ऐतिहासिक असमानताओं से निपटना पड़ता है।

इन चुनौतियों के बावजूद, समकालीन नारीवादी राजनीति के लिए कई संभावनाएँ भी मौजूद हैं। डिजिटल आंदोलन इस दिशा में एक शक्तिशाली माध्यम बनकर उभरे हैं। सोशल मीडिया ने महिलाओं को अपनी आवाज़ उठाने और संगठित होने का मंच दिया है। भारत में #IWillGoOut अभियान इसका एक प्रमुख उदाहरण है, जिसने 2017 में महिलाओं के सार्वजनिक स्थानों में अधिकारों की माँग को मजबूत किया [18]। इस अभियान ने सड़कों पर प्रदर्शन के साथ-साथ ऑनलाइन जागरूकता फैलाई, जिससे लैंगिक हिंसा और असुरक्षा के खिलाफ एक व्यापक चर्चा शुरू हुई। इसी तरह, #MeToo आंदोलन ने भारत में भी प्रभाव डाला, जहाँ महिलाओं ने कार्यस्थल पर उत्पीड़न की घटनाओं को साझा किया और जवाबदेही की माँग की। नीतिगत सुधार भी संभावनाएँ प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम 2017 ने कामकाजी माताओं के लिए 26 सप्ताह का सवेतन अवकाश सुनिश्चित किया, जो महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाने में मददगार है [21]। इसके अलावा, शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश भी महत्वपूर्ण है। सरकार की "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" योजना ने लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है, हालाँकि इसके परिणाम अभी मिश्रित हैं। वैश्विक स्तर पर, संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में लैंगिक समानता (लक्ष्य 5) को शामिल करना एक सकारात्मक कदम है, जो नीतिगत और सामुदायिक स्तर पर परिवर्तन की संभावना को बढ़ाता है। भारत में स्थानीय संगठनों, जैसे सेंटर फॉर सोशल रिसर्च और ऑल इंडिया वुमन कॉन्फ्रेंस, ने महिलाओं के अधिकारों के लिए जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए हैं। इन प्रयासों से यह स्पष्ट है कि डिजिटल तकनीक और नीतिगत ढांचे मिलकर नारीवादी राजनीति को नई दिशा दे सकते हैं।

इन संभावनाओं को साकार करने के लिए सामुदायिक भागीदारी और शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा। डिजिटल युग में सूचना का प्रसार तेजी से होता है, लेकिन इसके साथ ही फर्जी खबरों और गलत सूचनाओं का खतरा भी बढ़ता है, जो आंदोलनों को कमजोर कर सकता है। इसलिए, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना जरूरी है, खासकर ग्रामीण महिलाओं के लिए, ताकि वे इस मंच का प्रभावी उपयोग कर सकें। साथ ही, पुरुषों को नारीवादी आंदोलनों में सहयोगी के रूप में शामिल करना भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि लैंगिक समानता एक संयुक्त प्रयास की माँग करती है। भारत में ट्रांसजेंडर और क्वीयर समुदायों के लिए हाल के कानूनी सुधार, जैसे 2019 का ट्रांसजेंडर व्यक्तियों (अधिकार संरक्षण) अधिनियम, समावेशी नारीवाद की संभावना को दर्शाते हैं [22]। इस

तरह, चुनौतियों के बीच भी नारीवादी राजनीति के पास समाज को बदलने की अपार संभावनाएँ हैं, बशर्ते इन अवसरों को सही दिशा में उपयोग किया जाए।

## 5. निष्कर्ष

स्त्रीवादी राजनीति ने समाज को ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और समकालीन स्तर पर गहराई से प्रभावित किया है। प्राचीन काल से लेकर डिजिटल युग तक, इसकी यात्रा महिलाओं के संघर्ष, प्रतिरोध और उपलब्धियों की कहानी है। प्रथम लहर ने मताधिकार और शिक्षा जैसे बुनियादी अधिकारों की नींव रखी, तो दूसरी लहर ने व्यक्तिगत और सांस्कृतिक स्वतंत्रता को जोड़ा। तीसरी और चौथी लहर ने विविधता, समावेशिता और डिजिटल सक्रियता के साथ इसे वैश्विक मंच पर पहुँचाया। सैद्धांतिक रूप से, उदारवादी नारीवाद ने सुधारों की शुरुआत की, मार्क्सवादी नारीवाद ने शोषण के आर्थिक आधार को उजागर किया, कट्टरपंथी नारीवाद ने पितृसत्ता को चुनौती दी, और उत्तर-आधुनिक नारीवाद ने लिंग की अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया। भारत में, जाति, धर्म और औपनिवेशिक इतिहास ने नारीवाद को एक अनूठा स्वरूप दिया, जहाँ दलित नारीवाद जैसे दृष्टिकोणों ने इसे समृद्ध किया। यह ऐतिहासिक और सैद्धांतिक विकास दर्शाता है कि स्त्रीवादी राजनीति केवल अधिकारों की माँग नहीं, बल्कि समाज की संरचनात्मक पुनर्रचना का प्रयास है।

आज यह एक समावेशी और न्यायपूर्ण भविष्य की ओर बढ़ रही है। डिजिटल आंदोलन, नीतिगत सुधार और सामुदायिक जागरूकता ने इसे नई शक्ति दी है। हालाँकि, यौन हिंसा, शिक्षा की कमी और आर्थिक असमानता जैसे मुद्दे अभी भी बाधाएँ हैं। भारत में निर्भया जैसे आंदोलनों और वैश्विक स्तर पर #MeToo ने दिखाया कि नारीवादी चेतना अब सीमाओं से परे है। भविष्य में, इसे और समावेशी बनाने के लिए ट्रांसजेंडर, क्वीयर और हाशिए के समुदायों को शामिल करना होगा। पुरुषों को सहयोगी बनाना और डिजिटल साक्षरता बढ़ाना भी जरूरी है। इस तरह, स्त्रीवादी राजनीति एक सतत प्रक्रिया है, जो समाज को समानता और न्याय की ओर ले जा रही है।

## 6. संदर्भ


1. आर. थापर, प्रारंभिक भारत: उत्पत्ति से 1300 ईस्वी तक, पेंगुइन बुक्स, 2002।
2. ई. सी. स्टैंटन, सेनेका फॉल्स घोषणा, 1848।
3. एस. सेन, सावित्रीबाई फुले: भारत में महिला शिक्षा की अग्रणी, जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री, खंड 89, अंक 2, पृ. 45-60, 2011।
4. एस. द बोउvoir, द सेकेंड सेक्स, विंटेज बुक्स, 1949।
5. वी. शिवा, स्टेइंग अलाइव: वुमन, इकोलॉजी, एंड डेवलपमेंट, जेड बुक्स, 1988।
6. टी. बर्क, #MeToo: सर्वाइवर्स के लिए एक आंदोलन, टाइम मैगज़ीन, अक्टूबर 2017।
7. के. कन्नबिरन, निर्भया की राजनीति, इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 48, अंक 1, पृ. 23-27, 2013।
8. एम. वोल्स्टनक्राफ्ट, ए विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन, पेंगुइन क्लासिक्स, 1792।
9. सी. ए. मैककिनन, टुवार्ड ए फेमिनिस्ट थ्योरी ऑफ द स्टेट, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989।
10. एफ. एंगेल्स, द ओरिजिन ऑफ द फैमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एंड द स्टेट, पेंगुइन क्लासिक्स, 1884।
11. बी. अग्रवाल, ए फील्ड ऑफ वन्स ओन: जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994।
12. के. मिलेट, सेक्शुअल पॉलिटिक्स, यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉय प्रेस, 1970।
13. जे. बटलर, जेंडर ट्रबल: फेमिनिज्म एंड द सबवर्जन ऑफ आइडेंटिटी, रूटलेज, 1990।
14. यू. चक्रवर्ती, ब्राह्मणवादी पितृसत्ता की अवधारणा, जेंडर एंड हिस्ट्री, खंड 7, अंक 2, पृ. 177-193, 1995।

15. एस. रेगे, राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेंडर, ज़ुबान, 2006।
16. संयुक्त राष्ट्र, महिलाओं के खिलाफ हिंसा: प्रमुख आँकड़े, यूएन विमेन रिपोर्ट, 2022।
17. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, क्राइम इन इंडिया 2023, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, 2024।
18. ए. रॉय, #IWillGoOut: पब्लिक स्पेस की पुनर्प्राप्ति, फेमिनिस्ट रिव्यू, खंड 120, अंक 1, पृ. 89-102, 2018।